

1001

v/

मिथ्या वाणी



लेखक

प्रा० उमाकान्त उपाध्याय, एम० ए०

आर्य समाज कलकत्ता

१६, विधान सभा,

कलकत्ता-६.

॥ ओ३म् ॥

महर्षि वचन

“वह सत्य नहीं कहाता जो सत्य के स्थान में असत्य और असत्य के स्थान में सत्य का प्रकाश किया जाय। किन्तु जो पदार्थ जैसा है, उसको वैसा ही कहना लिखना और मानना सत्य कहाता है। जो मनुष्य पक्षपाती होता है, वह अपने असत्य को भी सत्य और दूसरे विरोधी मतवाले के सत्य को भी असत्य सिद्ध करने में प्रवृत्त होता है, इसलिए वह सत्य मत को प्राप्त नहीं हो सकता। इसीलिए विद्वान् आत्माओं का यही मुख्य काम है कि उपदेश वा लेख द्वारा सब मनुष्यों के सामने सत्यासत्य का स्वरूप समर्पित कर दें, पश्चात् वे स्वयं अपना हिताहित समझ कर सत्यार्थ का ग्रहण और मिथ्यार्थ का परित्याग करके सदा आनन्द में रहें। मनुष्य का आत्मा सत्यासत्य का जानने वाला है। तथापि अपने प्रयोजन की सिद्धि, हठ, दुराग्रह और अविद्यादि दोषों से सत्य को छोड़ असत्य में झुक जाता है। परन्तु इस ग्रन्थ में ऐसी बात नहीं रखी है और न किसी का मन दुखाना वा किसी की हानि पर तात्पर्य है। किन्तु जिससे मनुष्य जाति की उन्नति और उपकार हो, सत्यसत्य को मनुष्य लोग जान कर सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग करें, क्योंकि सत्योपदेश के बिना अन्य कोई भी मनुष्य जाति की उन्नति का कारण नहीं है।”

— सत्यार्थ प्रकाश की भूमिका से

स्कैंड/१३/१३/१३

॥ ओ३म् ॥

देववाणी की

मिथ्या वाणी



‘देव-वाणी’ नाम की एक छोटी-सो पुस्तिका हमें मिली। इस पर यह तो सुस्पष्ट नहीं लिखा है कि इसके लेखक कौन हैं, किन्तु पुस्तिका देखने से जान पड़ता है कि इसे “परम सन्त सद्गुरुदेव श्री ‘हंस’ जी महाराज” ने या उनकी ओर से किसी ने लिखा है। इसके मिलने का पता है—कार्यालय, हंसादेश, प्रेमनगर, पो० ज्वालापुर, हरिद्वार।

इस पुस्तिका में महर्षि श्री स्वामी दयानन्दजी सरस्वती, श्री स्वामी करपात्रीजी तथा श्री आचार्य विनोवा भावे की कुछ एक मान्यताओं की आलोचना बड़े छिछले ढंग से की गई है।

हम महर्षि श्री स्वामी दयानन्दजी की मान्यताओं को सत्य मानते हैं, स्वीकार करते हैं और उनका प्रचार भी करते हैं। अतः ‘सत्य के ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने में सदा उद्यत रहना चाहिए’ इस नियम के अनुसार देव-वाणी में प्रस्तुत आलोचना के ऊपर यत्किञ्चित् विचार प्रकट करना आवश्यक और उचित समझते हैं।

(१) देव-वाणी में लिखा है—

“संसार में भगवान् के मानने वाले दो प्रकार के मनुष्य हैं, एक वह जो भगवान् को निराकार या निर्गुण मानते हैं, दूसरे वह

लोग जो भगवान् को साकार या सगुण मानते हैं। महर्षि स्वामी दयानन्दजी का यह सिद्धान्त है कि परमात्मा निराकार है, इन्द्रियातीत और कल्पना से परे है; परन्तु कल्पनातीत अगोचर तथा मन, बुद्धि से परे होते हुए भी जिस काल में जिसने भी जाना, आखिर कैसे और किस चीज से जाना? क्योंकि इन्द्रियों मन, और बुद्धि द्वारा ईश्वर को कोई जान नहीं सकता।”

—पृष्ठ १

समीक्षा :

निराकार और निर्गुण का एक अर्थ नहीं है। ये शब्द एक दूसरे के पर्यायवाची नहीं हैं। निराकार का अर्थ हुआ ‘विना आकार वाला’—जिसके आकार न हो जैसे आकाश। निर्गुण का अर्थ हुआ जिसमें गुण न हो। इसी प्रकार साकार का अर्थ है ‘आकार वाला’ और सगुण का अर्थ है ‘गुणवाला’।

निराकार वस्तु भी सगुण हो सकती है। उदाहरण के लिए आकाश निराकार है पर आकाश का गुण शब्द है। आकाश निराकार होकर भी सगुण है।

सगुण और निर्गुण सापेक्ष्य शब्द हैं। किसी भी वस्तु में संसार के सारे गुण नहीं हो सकते और प्रत्येक वस्तु में कोई-न-कोई गुण रहता ही है। जिस वस्तु में जो गुण है, उस गुण की अपेक्षा से वह वस्तु सगुण है और उसी वस्तु में जो गुण नहीं है उस गुण की अपेक्षा से वह वस्तु निर्गुण है। उदाहरण के लिए आकाश का गुण शब्द है इसलिए आकाश सगुण हुआ किन्तु आकाश में रूप,

रस, गन्ध, स्पर्शादि गुण नहीं हैं तो इनकी अपेक्षा से आकाश निर्गुण हुआ ।

इसी प्रकार संसार की वस्तु मात्र सगुण निर्गुण दोनों ही हैं । परमात्मा भी सगुण निर्गुण दोनों ही है ।

महर्षि स्वामी दयानन्द जी ने इस सम्बन्ध में निम्न प्रकार से लिखा है—

“यो गुणेभ्यो निर्गतः स निर्गुण ईश्वरः, जितने सत्व, रज, तम, रूप, रस, स्पर्श, गन्धादि जड़ के गुण ; अविद्या, अल्पज्ञता, राग, द्वेष और अविद्यादि क्लेश जीव के गुण हैं उनसे जो पृथक् है ; इसमें ‘अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययम्’ (कठोप० ३।१५) इत्यादि उपनिषदों का प्रमाण है । जो शब्द, स्पर्श, रूपादि गुणरहित है इससे परमात्मा का नाम निर्गुण है ।”

“यो गुणैः सह वर्तते स सगुणः, जो सबका ज्ञान सर्व-सुख पवित्रता अनन्त बलादि गुणों से युक्त है इसलिये परमेश्वर का नाम ‘सगुण’ है । जैसे पृथिवी गन्धादि गुणों से ‘सगुण’ और इच्छादि गुणों से रहित होने से निर्गुण है वैसे जगत् और जीव के गुणों से पृथक् होने से परमेश्वर ‘निर्गुण’ और सर्वज्ञादि गुणों से सहित होने से ‘सगुण’ है ।”

—सत्यार्थप्रकाश, प्रथम समुल्लास

स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश में महर्षि ने 'सगुण निर्गुणस्तुति प्रार्थनोपासना' के ऊपर निम्नप्रकार लिखा है—

“जो जो गुण परमेश्वर में हैं उनसे युक्त और जो जो गुण नहीं हैं उनसे पृथक् मानकर प्रशंसा करना सगुण निर्गुण स्तुति ; शुभ गुणों के ग्रहण की ईश्वर से इच्छा और दोष छुड़ाने के लिए परमात्मा का सहाय चाहना सगुण निर्गुण प्रार्थना और सब गुणों से सहित सब दोषों से रहित परमेश्वर को मानकर अपने आत्मा को उसके और उसकी आज्ञा के अर्पण कर देना सगुण निर्गुणोपासना कहाती है ।”

इतने वर्णन से यह सुस्पष्ट हो गया कि 'देव-वाणी' के लेखक को यही पता नहीं है कि श्री स्वामी दयानन्दजी सरस्वती के क्या मन्तव्य हैं। स्वामी दयानन्दजी परमात्मा को, आर्य ग्रन्थों के आधार पर 'निराकार' तो मानते ही हैं, साथ ही परमात्मा को सगुण निर्गुण दोनों मानते हैं। 'देव-वाणी' के उद्धरण को पढ़ने से पाठकों को यह अच्छी तरह पता लग गया होगा कि देव-वाणी के लेखक महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती, स्वामी करपात्रीजी और आचार्य विनोवा भावे जैसे व्यक्तियों की आलोचना करके अपनी साध तो पूरी करना चाहते हैं किन्तु इनको सगुण निर्गुण, साकार-निराकार जैसे सीधे-सादे शब्दों के अर्थ और आस्तिक समुदाय के

(५)

विभिन्न वर्गों की मान्यताओं से भी परिचय नहीं है। चलिये मान लिया कि इन्होंने महर्षि दयानन्दजी के साथ ही आस्तिक समुदाय के विशाल साहित्य का अध्ययन नहीं किया तो फिर उनकी समालोचना के लिये उतावले क्यों होने लगे थे ?

देव-वाणी के लेखक का कहना है कि 'मन और बुद्धि द्वारा ईश्वर को कोई जान नहीं सकता।'

यह भी इस लेखक की अपनी ही सूझ-बूझ है। महर्षि स्वामी दयानन्दजी ने तो महर्षि पतञ्जलि के योग-दर्शन के आधार पर—

“योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः”

“तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्”

इन योग सूत्रों पर भाष्य करते हुए 'ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका' में उपासना प्रकरण में सुस्पष्ट लिखा है कि जब उपासक अपने मनकी वृत्ति को निरुद्ध कर लेता है तब “उपासकस्य मनो द्रष्टुः सर्वज्ञस्य परमेश्वरस्य स्वरूपे स्थितिं लभते” अर्थात् उस समय (उपासक का) नमः सर्वज्ञ परमेश्वर के स्वरूप में स्थिति लाभ करता है।

स्वामी दयानन्दजी तो मन की स्थिति परमेश्वर में होती है, ऐसा लिख रहे हैं किन्तु देववाणी का लेखक 'मन और बुद्धि द्वारा ईश्वर को कोई जान नहीं सकता' ऐसा अपना मनगढ़न्त सिद्धान्त लिख कर स्वामी दयानन्दजी की आलोचना करने की साध पूरी कर रहे हैं।

(२) देव-वाणी में लिखा है—

“जब भगवान को निराकार कहते हैं तो निराकार का ध्यान कैसे होगा ?”

—पृष्ठ ३

समीक्षा :

आपकी भाषा से ऐसा लगता है जैसे ध्यान साकार का ही हो सकता है। वस्तुतः ध्यान गुणों का ही लगता है। आकार एक गुण है इसलिये साकार का भी ध्यान होता है। जैसे सज्जनता, परोपकारिता, दयालुता, करुणा, कृपा, उदारता आदि का कोई आकार नहीं होता; किन्तु इन गुणों पर ध्यान लगता है, उसी प्रकार निराकार जगदीश्वर के गुणों का चिन्तन किया जाता है और ध्यान लगाया जाता है।

(३) देव-वाणी में लिखा है :—

“आकाश का रंग नीला और गुण शब्द है।”

पृष्ठ ३

समीक्षा :

आकाश का गुण ‘शब्द’ है, इसमें कोई विवाद नहीं। “शब्द गुणकमाकाशम्” यह तो है ही निर्विवाद।

किन्तु “आकाश का रंग नीला है” यह पढ़कर तो लेखक की विद्या-बुद्धि के स्तर पर सन्देह पैदा हो जाता है। देववाणी के लेखक आकाश को निराकार मानते हैं, फिर भी उसे नीला रंग वाला लिख रहे हैं—हद हो गई दुस्साहस की भी। बच्चे अपनी

बाल-बुद्धि से ऊपर दूर दिखाई पड़नेवाले नीले-नीले तम्बू जैसे तने हुए को आकाश कहते हैं। किन्तु बुद्धिमान् पढ़ा-लिखा जो पुस्तक लिखने का साहस करता हो—महर्षि दयानन्द सरस्वती, स्वामी करपात्रीजी, आचार्य विनोबा भावे जैसे व्यक्तियों की आलोचना के लिये कलम उठानेवाला—आकाश को नीला कहे, तो उनके समर्थक उनके दुस्साहस की दाद दे सकते हैं। हमें तो उनकी इस विद्या पर दया आती है, इन्हें तो 'लाल बुभुक्षु' की ही उपधि मिलनी चाहिये।

(४) देववाणी में लिखते हैं :—

“निराकार की जगह साकार या सगुण वस्तु का ध्यान करते रहे, तो गुणवालो वस्तु का ही तो ध्यान हुआ ? वह निर्गुण ब्रह्म का ध्यान कहाँ हुआ ? माया का ही तो ध्यान हुआ।” प्रश्न ३

समीक्षा :

‘निराकार और निर्गुण’ को एक मानना तथा ‘साकार-सगुण’ को एक मानना तो लेखक का प्रज्ञापराध है। लगता है कि इसी मौलिक भ्रम के कारण लेखक ने साधारण स्तर की भूलों की हैं।

देववाणी के लेखक की भाषा से ऐसा लगता है कि सगुण ब्रह्म के ध्यान को ‘माया’ का ध्यान समझते हैं। प्रश्न है कि यह माया क्या है ? सत्य या मिथ्या ? अद्वैतवादी ‘माया’ को अनिर्वचनीय मानते हैं, किन्तु देववाणी के लेखक तो माया में भी उलझे लगते हैं।

(८)

(५) देववाणी के लेखक लिखते हैं :—

“तथा फिर बिना ज्ञान के यह कह देना कि परमात्मा निराकार है, ऐसा कहनेवालों की यह तो बड़ी भारी भूल है।” पृष्ठ ४

समीक्षा :

देववाणी के लेखक के विचार में परमात्मा को निराकार कहना अज्ञान है, कहनेवालों की भूल है। इसीका अर्थ हुआ कि परमात्मा ‘साकार’ हुआ। देववाणी के लेखक को चाहिये था कि परमात्मा की साकारता के लिये तर्क देते, प्रमाण देते ; परमात्मा को निराकार मानने में जो दोष उनकी समझ में आते, उन्हें बताते। किन्तु ‘ऐसा कहनेवालों की यह तो बड़ी भारी भूल है’ ऐसा लिखकर निज को ही कृतार्थ सा कर लिया।

ईश्वर को निराकार माननेवाले ऋषि-महर्षि और उन्हीं की परम्परा पर चलनेवाले महर्षि दयानन्दजी सरस्वती परमात्मा को निराकार मानते हैं तर्क और प्रमाण के आधार पर। महर्षि दयानन्द सरस्वतीजी ने परमात्मा के साकार-निराकार प्रश्न पर सत्यार्थ प्रकाश के सप्तम समुल्लास में लिखा है :—

पूर्व पक्ष — “ईश्वर साकार है वा निराकार !”

उत्तर पक्ष — “निराकार, क्योंकि जो साकार होता तो व्यापक नहीं हो सकता। जब व्यापक न होता तो सर्वज्ञादि गुण भी ईश्वर में न घट सकते, क्योंकि परिमित वस्तु में गुण कर्म स्वभाव भी परिमित रहते हैं तथा

शीतोष्ण, क्षुधा, तृषा और रोग दोष, छेदन-भेदन आदि से रहित नहीं हो सकता। इससे यही निश्चित है कि ईश्वर निराकार है। जो साकार हो तो उसके नाक, कान, आँख आदि अवयवों का बनानेहारा दूसरा होना चाहिए, क्योंकि जो संयोग से उत्पन्न होता है, उसको संयुक्त करनेवाला निराकार चेतन अवश्य होना चाहिए। जो कोई यहाँ ऐसा कहे कि ईश्वर ने स्वेच्छा से आप ही आप अपना शरीर बना लिया, तो भी यही सिद्ध हुआ कि शरीर बनने के पूर्व निराकार था। इसलिए परमात्मा कभी शरीर धारण नहीं करता, किन्तु निराकार होने से सब जगत् को सूक्ष्म कारणों से स्थूलाकार बना देता है।”

महर्षि दयानन्दजी सरस्वती की भूल भ्रान्ति निकालने के लिये आवश्यक यह था कि ‘देव वाणी’ के लेखक महोदय महर्षि के ग्रन्थों से उद्धरण देकर उनकी समालोचना का साहस करते। किन्तु इस काम के लिये संयम-योग्यता की आवश्यकता थी, वह इनसे सम्भव न हुआ।

(६) देववाणी में लिखा है—

‘कहने का भाव यह है कि परमात्मा के गुण परमात्मा से अलग नहीं हैं। जब परमात्मा के गुण ही परमात्मा से अलग

नहीं, तो गुण और गुणी एक ही वस्तु तो हैं, परन्तु कहने मात्र के दो हैं। जैसे सागर और सागर की लहर एक ही है।”

पृष्ठ ४

समीक्षा :

किसी भी द्रव्य के गुण अपने द्रव्य से अलग नहीं होते। किन्तु इससे यह निष्कर्ष निकालना कि ‘गुणी’ और ‘गुण’ एक ही हैं, यहाँ तो ‘देव वाणी’ के लेखक की दार्शनिक प्रतिभा फूट पड़ी है ! पृथिवी गुणी है, गन्ध उसका गुण है—‘गन्धवती पृथिवी’; तो देववाणी के लेखक की दार्शनिकता यह कहती है गन्ध और पृथिवी एक ही है। आगे गुण और गुणी के उदाहरण में तो देववाणी के लेखक की दार्शनिक प्रतिभा और भी कमालकर बैठी है। आप लिखते हैं ‘गुण और गुणी एक ही वस्तु हैं, परन्तु कहने मात्र के दो हैं; जैसे सागर और सागर की लहर एक ही है।’ यहाँ इनकी भाषा कह रही है कि सागर गुण और लहर गुणी है। धन्य है यह गुण गुणी की जानकारी !

(७) देववाणी में लिखा है—

“उन अणु परमाणुओं से वह शक्ति अलग कहाँ रखी जायेगी ? व्याप्त से व्यापक अलग कैसे हो सकता है ? शक्ति का ज्ञान ही नहीं। पर बिना ज्ञान के ही कह रहे हैं कि भगवान् निराकार है।”

पृष्ठ ५

समक्षा :

परमात्मा सर्वव्यापक है। सभी आस्तिक ऐसा ही मानते हैं। परमात्मा की शक्ति से कण-कण ओत-प्रोत हो रहा है। किन्तु आप तो व्याप्त (होना चाहिये व्याप्य) और व्यापक को एक ही मान रहे हैं। अग्नि जल में व्यापक हो गई तो जल गरम हो गया। अग्नि व्यापक और जल व्याप्य है। देववाणी के लेखक की समझ में ऐसा आता है कि आग और पानी एक ही हैं। इसी दर्शन बुद्धि पर निराकार साकार का झगड़ा ले बैठे। जिसे व्याप्य व्यापक सम्बन्ध का भी ज्ञान न हो वह इन प्रश्नों पर कलम उठावे, उसके इस साहस पर तरस आती है !

(८) देववाणी के लेखक ने आर्यसमाज में प्रचलित एक प्रसिद्ध गीत—‘अजब हैरान हूँ भगवन् ! तुम्हें क्यों कर रिझाऊँ मैं ।’ लिखा है और फिर बड़े व्यंग्य से लिखा है—

“अकल मन्द बुद्धिमानो ! जब भगवान् के कोई भी इन्द्री नहीं है, और तुम ऐसा मानते हो तो फिर तुम्हारी बात या प्रार्थना सुनने के लिये भगवान् के कान कैसे बन गये ? स्वार्थ और मनमानी बातों का त्याग करके सच्चाई को समझो !”

पृष्ठ ५

समीक्षा :

जब परमात्मा ‘अकाय’ बिना शरीर के हैं फिर उसके इन्द्रिय

का प्रश्न ही कहाँ है ? तथापि हम उससे प्रार्थना करते हैं । उसके गुण गाते हैं, उसके गुणों का ध्यान करते हैं । क्यों ?

महर्षि स्वामी दयानन्दजी ने सत्यार्थ प्रकाश सप्तम समुद्रास में लिखा है—

पूर्व पक्ष—क्या स्तुति आदि करने से ईश्वर अपना नियम छोड़, स्तुति-प्रार्थना करने वाले का पाप छुड़ा देगा ?

उत्तर०—नहीं ।

पूर्व०—तो फिर स्तुति-प्रार्थना क्यों करना ?

उत्तर०—उनके करने का फल अन्य ही है ।

पूर्व०—क्या है ?

उत्तर०—स्तुति से ईश्वर में प्रीति, उसके गुण कर्म-स्वभाव से अपने गुण कर्मस्वभाव का सुधारना, प्रार्थना से निरभिमानता, उत्साह और सहाय का मिलना, उपासना से परब्रह्म से मेल और उसका साक्षात्कार होना ।

x

x

x

x

“इसका फल यह है कि जैसे परमेश्वर के गुण हैं, वैसे गुण कर्मस्वभाव अपने भी करना । जैसे वह न्याय-

(१३)

कारी है तो आप भी न्यायकारी होवे । और जो केवल भांड के समान परमेश्वर के गुणकीर्तन करता जाता और अपने चरित्र नहीं सुधारता उसका स्तुति करना व्यर्थ है ।”

अब आप समझ गये होंगे कि मनमानी अर्थात् विना तर्क, विना विद्या के कौन बात कर रहा है । दूसरों पर आक्षेप करने से पूर्व उनकी बात समझ लेते । आपकी अक्लमन्दी और बुद्धिमानी तो इसीसे प्रकट है । जो व्याप्य को व्याप्त, और इन्द्रिय को इन्द्री लिखता है, वह है तो आला दर्जे का बुद्धिमान्, विद्वान् !

रही स्वार्थ की बात और सच्चाई अपनाने की, सो तो सामने आ जाती है, थोड़ा धैर्य रखिये ।

इसके पश्चात् आप सगुण उपासना का नाम लेकर साकार उपासना के विरुद्ध कुछ लिखते हैं । श्री स्वामी करपात्रीजी और आचार्य बिनोबा भावे पर भी बरसते हैं । फिर हंसमत की मान्यताओं का वर्णन करते हैं ।

हंसमत के लेखक निराकार, साकार, सगुण-निर्गुण, सब प्रकार की प्रचलित उपासना का खण्डन करके रामराज्य परिषद्, भूदान का मजाक उड़ाकर, अद्वैतवाद की खिछी उड़ाकर, हंस मत की मान्यता के रूप में गुरु की महिमा का वर्णन करते हैं ।

गुरु की महिमा का वर्णन तो भारतीय परम्परा में, ऋषि महर्षि की मान्यताओं में भरा पड़ा है । किन्तु हंसमत की गुरु महिमा और गुरु व्याख्या अपने ढंग की निराली ही है ।

(६) देवबाणी में गुरु की महिमा और अर्थ बताते हुए लिखा है—

“जब यह जगत गुरु और ब्रह्म-ज्ञानी ही परमात्मा की रोशनी का दर्शन नहीं करायेंगे, तो और कौन करायेगा ? जब कि गुरु का अर्थ है “गु” नाम अन्धकार “रु” नाम प्रकाश, जो अन्धेरे को मिटाकर प्रकाश करता है।”

पृष्ठ ११

समीक्षा :

गुरु की महिमा से सभी सहमत हैं। गुरु की कृपा से ही ज्ञान प्रकाश मिलता है, इसमें सन्देह नहीं। किन्तु शिष्य को गुरु भक्ति के साथ साधना करनी पड़ती है। जीवन में साधना, विद्या, आचरण अच्छा न हो तो गुरु का ज्ञान, उनकी कृपा क्या करे ? अपना घड़ा फूट गया हो तो उसमें अमृत भी नहीं रुकेगा। सच्चे गुरु की कृपा और शिष्य की सच्ची साधना मिलकर इष्ट को पूर्ण करते हैं।

किन्तु गुरु के नाम पर हंस जी के कुछ निराले ढंग देखिये—

“गुरु की तन, मन, धन से सेवा करने पर भी किसी प्रकार की अभिलाषा का न होना ही निष्काम भक्ति कहलाती है।”

हंस योग प्रकाश पृ० २१७

गुरु की सेवा किस प्रकार करें इसकी भी बानगी देखिये —

“मान लो हम बाजार से कोई वस्तु लेने के लिये जाते हैं। उस वस्तु की कीमत एक रुपया हो और हम पैसे दो पैसे में या आने दो आने में लेना चाहें, तो नहीं ले सकते। ऐसे ही तन, मन, धन देने पर ही सद्गुरु अपनाये जाते हैं। यदि अपनी कमाई का पैसा दो पैसा देकर यह समझा जावे कि गुरु महाराज जी मेरे हो गये हैं, तो इसे भूल ही कहना होगा। कारण यह है कि रुपये की वस्तु तो रुपये में ही मिलेगी।”

हंस योग प्रकाश पृ० २३७-३८

अपना तन मन और सारा धन दे दीजिये ‘सत्गुरु हंस महाराज’ को और वे आपके लिये भगवान् बनकर आये हैं।

हमने पृ० १३ पर लिखा था ‘थोड़ा धैर्य रखिये’ अब देख लीजिये यह हंस मत वाले दूसरों को स्वार्थी कहते हैं और अपने लिये इस प्रकार धन की माँग कर रहे हैं। ये इस तरह की स्वार्थ की बातें करते हैं और दूसरों को स्वार्थ त्यागने का उपदेश करने में इन्हें लज्जा भी नहीं आती !

इतना ही नहीं, पुजारी तो मूर्ति पर चढ़ावा चढ़वाता है, किन्तु ‘हंस’ जी तो स्वयं परमात्मा का अंश बनकर चढ़ावा चढ़वाते हैं अपने शिष्यों का ‘तन मन धन’ सब कुछ माँगते हैं—

“परन्तु जब तक शिष्य में गुरु के प्रति ईश्वर भाव नहीं होता,

(१६)

तब तक सद्शिष्य नहीं होता और न उन्नत होनेवाले भगवत ज्ञान की प्राप्ति होती है। गुरु में परमात्मा बुद्धि होने पर सद्शिष्य को गुरु की प्रत्येक क्रिया लीला मालूम होने लगती है।”

हंस योग प्रकाश पृ० २१५-१६

अब तक परमात्मा का अंश बनकर ‘तन मन धन’ ही माँगा था, अब ‘लीला’ के नाग पर प्रत्येक क्रिया की छूट ले ली।

श्री हंस जी को परमात्मा का अंश बनने से ही सन्तोष नहीं है। वे तो अपने को ‘अवतार’ मानते हैं—

“तब भक्तों पर कृपा करने वाले और संसार में जिसका वास है वह परमेश्वर भगवान ‘हंस’ प्रगट हुये।”

हंस योग प्रकाश पृ० ६

और भी इनकी लीला देखिये—

“स्वायम्भु मनु (ब्रह्मा) की सेवा भक्ति से प्रसन्न होकर जिस परम प्रभु परमेश्वर श्री सद्गुरु देव भगवान ने दर्शन दिये कलि के जीवों का उद्धार करने के लिये उसी भगवान ‘हंस’ ने प्रगट होकर असंख्य जीवों को भवसागर से पार लगाया। अपना अमृत नाम और परम प्रकाश स्वरूप दिखाकर अनेकों जीवों का कल्याण किया ! कलि के भयंकर पापों से पीड़ित जीवों के कल्याण के हेतु ही स्वायम्भु मनु (ब्रह्मा) ने आदि देव पुरुषोत्तम भगवान्

“हंस” की आराधना की, क्योंकि नहीं तो उनका रचा हुआ संसार नष्ट-भ्रष्ट हो जाता ।”

हंस योग प्रकाश पृ० ११-१२

हंस मत में प्रचलित ‘सद्गुरुदेव श्री “हंस” जी की आरती भी होती है । इससे इनके पाखण्ड का और भी पता चल जायगा—

“सतयुग, त्रेता, द्वापर, नाना रूप लिया ।

कलिकाल भक्तन हित ‘हंस’ अवतार लिया ॥

श्री सद्गुरु देवकी शरण में जो कोई नर आवे ।

भवसागर से तरकर परम गति पावे ॥”

ये ‘हंस’ जी भगवान् श्री कृष्ण का अवतार भी बनते हैं—

“उत्थान धर्म का करने को, ‘हंस’ रूप में आये हो ।

गीता में वचन दिया था, उसे निभाने आये हो ॥”

भगवान् श्री कृष्ण का गीता में वचन है :

यदा यदाहिधर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत !

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥

श्री हंसजी ने भी अवतार बनने की धुन में जो कुछ कहीं देखा उसे अपने ऊपर घटा लिया ।

इनका 'गुरु' शब्द का अर्थ देख कर मैं तो चकरा गया ।
इसलिए नहीं कि गुरु अन्धकार को दूर करके प्रकाश देता है, बल्कि
इसलिए कि इनका खण्डार्थ बड़ा विचित्र है—

$$\text{गुरु} = \text{गु} + \text{रु}$$

$$= (\text{गु} = \text{अन्धकार}) + (\text{रु} = \text{प्रकाश})$$

$$= \text{जो अँधेरे को मिटा कर प्रकाश करता है।}$$

गुरु के इस खण्डार्थ में कमाल हो गया ।

गुरु शब्द संस्कृत के 'गृ शब्दे' और 'गृ निगरणे' धातुओं से
चनता है । "यो धर्म्यान् शब्दान् गृणात्युपदिश्याति स गुरुः" जो
धर्म्य शब्दों का उपदेश करता है । और

"गिरत्यज्ञानमिति गुरुः" जो अज्ञान को नष्ट करे वह गुरु है ।
किन्तु हंस मत के इस लेखक के खण्डार्थ को देखकर एक ऐसे ही
प्राइमरी स्कूल के अध्यापक का स्मरण हो गया । वे अपने
विद्यार्थियों को खरगोश का अर्थ बता रहे थे—

$$\text{खरगोश} = \text{चौगड़ा}$$

$$= \text{खर} + \text{गोश}$$

$$= (\text{खर} = \text{चौ}) + (\text{गोश} = \text{गड़ा})$$

$$\text{खरगोश} = \text{चौगड़ा}$$

इसी प्रकार अनुज का अर्थ है छोटा भाई । किन्तु 'हंस पद्धति'

पर इसका अर्थ कुछ इस प्रकार होगा—

अनुज = छोटा भाई

= अ + नुज

= (अ = छोटा) + (नुज = भाई)

इतनी कम विद्यावालों का इतना बड़ा दुस्साहस ! जनता को, अनपढ़ भोले भाले लोगों को बहका कर भगवान् का दर्शन कराने का बहाना बनाकर ठगा जाता है। इसे तो सरकार को भी नहीं सहना चाहिए।

सुनते हैं ये कलियुगी भगवान् के अवतार 'सद्गुरु हंस' जी तो मर गये और उनके कमाने खाने वाले चेलों ने, इन अवतारी 'आत्मा' का प्रवेश इनके पुत्र के शरीर में हो जाने की घोषणा की है। वाप अवतार था तो बेटा भी अवतार हो गया।

धन्य है यह दर्शन ! यह आध्यात्मिकता !! इसी को 'गुरुडम' और 'पोपडम' कहते हैं।

'हंसगुरु' के इन चेलों को यह समझ में न आया कि हंस का आत्मा छोटे बेटे के शरीर में कैसे चला गया ? क्या बेटे के दो आत्मा हो गये ? एक शरीर में एक ही आत्मा रहता है। यहाँ वाप बेटे दोनों का आत्मा एह ही शरीर में आ जमे।

'हंसजी' यदि भगवान् के अवतार ही थे तो मरने क्यों लगे थे। सदा युवक बने रहना चाहिये था।

अस्तु 'हंस' की माया में बहुत से भोले भाले भाई फँस जाते हैं।

इनकी देव वाणी के स्वामी दयानन्द जी के मन्तव्यों से सम्बन्धित अंश की समीक्षा हमने कर दी है।

हमारा उद्देश्य केवल मात्र इतना ही है—

“सत्य के ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने में सदा उद्यत रहना चाहिये”

आर्यसमाज का चतुर्थ नियम

हंसामत की समालोचना के रूप में पाठक दो पुस्तकों से लाभ उठा सकते हैं—

१) हंसामत का पोल खाता

२) गुरुडम के पाखण्ड

}

ले० डा० श्री राम आर्य

प्रकाशक—

वैदिक साहित्य प्रकाशन

कासगंज (उ० प्र०)

आर्यसमाज के नियम

- १—सब सत्यविद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सबका आदि मूल परमेश्वर है ।
- २—ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है। उसीकी उपासना करनी योग्य है ।
- ३—वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है । वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है ।
- ४—सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए ।
- ५—सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिए ।
- ६—संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है, अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और समाजिक उन्नति करना ।
- ७—सबसे प्रीति पूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिए ।
- ८—अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए ।
- ९—प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिए किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए ।
- १०—सब मनुष्यों को सामाजिक, सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें ।

प्रकाशक :

श्रीनाथदास गुप्त Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्त्री

आर्यसमाज कलकत्ता

१६, विधान सरणी,

कलकत्ता-६

मूल्य २० पैसे

मुद्रक :

रत्नाकर प्रेस

११/ए, सैयदशाली लेन,

कलकत्ता-७.

पादक